यह था कि विद्यार्थियों को राजनीति से अलग रहना चाहिए। वह अपने कालेज के किसी छात्र को किसी राजनीतिक जलसे में शरीक न होने देते। रमेश पहले ही दिन से इस आज्ञा का खुल्लमखुल्ला विरोध करने लगा। उसका कथन था कि अगर किसी को राजनीतिक जलसों में शामिल होना चाहिए, तो विद्यार्थी को। यह भी उसकी शिक्षा का एक अंग है। अन्य देशों में छात्रों ने युगांतर उपस्थित कर दिया है, तो इस देश में क्यों उनकी जबान बंद की जाती है। इसका फल यह हुआ कि साल खतम होने के पहले ही रमेश को इस्तीफा देना पड़ा। किंतु विद्यार्थियों पर उसका दबाव तिल भर भी कम न हुआ।

इस भाँति कुछ तो अपने स्वभाव और कुछ परिस्थितियों ने रमेश को मार-मारकर हाकिम बना दिया। पहले मुवक्किलों का पक्ष लेकर अदालत से लड़ा, फिर छात्रों का पक्ष लेकर प्रिंसिपल से रार मोल ली, और अब प्रजा का पक्ष लेकर सरकार को चुनौती दी। वह स्वभाव से ही निर्भीक, आदर्शवादी, सत्यभक्त तथा आत्माभिमानी था। ऐसे प्राणी के लिए प्रजा सेवक बनने के सिवा और उपाय ही क्या था ? समाचार-पत्रों में वर्तमान परिस्थिति पर उसके लेख निकलने लगे। उसकी आलोचनाएँ इतनी स्पष्ट, इतनी व्यापक और इतनी मार्मिक होती थीं कि शीघ्र ही उसकी कीर्ति फैल गयी। लोग मान गये कि इस क्षेत्र में एक नयी शक्ति का उदय हुआ है। अधिकारी लोग उसके लेख पढ़ कर तिलमिला उठते थे। उसका निशाना इतना ठीक बैठता था कि उससे बच निकलना असंभव था। अतिशयोक्तियाँ तो उनके सिरों पर से सनसनाती हुई निकल जाती थीं। उनका वे दूर से तमाशा देख सकते थे, अभिज्ञताओं की वे उपेक्षा कर सकते थे। ये सब शस्त्रे उनके पास पहुँचते ही न थे, रास्ते ही में गिर पड़ते थे। पर रमेश के निशाने सिरों पर बैठते और अधिकारियों में हलचल और हाहाकार मचा देते थे।

देश की राजनीतिक स्थिति चिंताजनक हो रही थी। यशवंत अपने पुराने मित्र के लेखों को पढ़-पढ़कर काँप उठते थे। भय होता, कहीं वह कानून के पंजे में न आ जाय। बार-बार उसे संयत रहने की ताकीद करते, बार-बार मिन्नतें करते कि जरा अपनी कलम को और नरम कर दो, जान-बूझकर क्यों विषधर कानून के मुँह में उँगली डालते हो ? लेकिन रमेश को नेतृत्व का नशा चढ़ा हुआ था। वह इन पत्रों का जवाब तक न देता था।

पाँचवें साल यशवंत बदलकर आगरे का जिला-जज हो गया।

देश की राजनीतिक दशा चिंताजनक हो रही थी। खुफिया-पुलिस ने एक तूफान खड़ा कर दिया था। उसकी कपोल-कल्पित कथाएँ सुन-सुनकर हुक्कामों की रूह फना हो रही थी। कहीं अखबारों का मुँह बंद किया जाता था, कहीं प्रजा के नेताओं का। खुफिया-पुलिस ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए हुक्कामों के कुछ इस तरह कान भरे कि उन्हें हर एक स्वतंत्र विचार रखनेवाला आदमी खूनी और कातिल नजर आता था।

रमेश यह अँधेर देखकर चुप बैठनेवाला मनुष्य न था। ज्यों-ज्यों अधिकारियों की निरंकुशता बढ़ती थी, त्यों-त्यों उसका भी जोश बढ़ता था। रोज कहीं न कहीं व्याख्यान देता और उसके प्रायः सभी व्याख्यान विद्रोहात्मक भावों से भरे होते थे। स्पष्ट और खरी बातें कहना ही विद्रोह है ! अगर किसी का राजनीतिक भाषण विद्रोहात्मक नहीं माना गया, तो समझ लो, उसने अपने आंतरिक भावों को गुप्त रखा है। उसके दिल में जो कुछ है, उसे जबान पर लाने का साहस उसमें नहीं है। रमेश ने मनोभावों को गुप्त रखना सीखा ही न था। प्रजा का नेता बनकर जेल और फाँसी से डरना क्या ! जो आफत आनी हो, आवे। वहसब कुछ सहने को तैयार बैठा था। अधिकारियों की आँखों में भी वही सबसे ज्यादा गड़ा हुआ था।

एक दिन यशवंत ने रमेश को अपने यहाँ बुला भेजा। रमेश के जी में तो आया कि कह दें, तुम्हें आते क्या शरम आती है ? आखिर हो तो गुलाम ही। लेकिन फिर कुछ सोचकर कहला भेजा, कल शाम को आऊँगा। दूसरे दिन वह ठीक 6 बजे यशवंत के बँगले पर जा पहुँचा। उसने किसी से इसका जिक्र न किया। कुछ तो यह खयाल था कि लोग कहेंगे, मैं अफसरों की खुशामद करता हूँ और कुछ यह कि शायद इससे यशवंत को कोई हानि पहुँचे।

वह यशवंत के बँगले पर पहुँचा तो चिराग जल चुके थे। यशवंत ने आकर उसे गले से लगा लिया। आधी रात तक दोनों मित्रों में खूब बातें होती रहीं। यशवंत ने इतने में नौकरी के जो अनुभव प्राप्त किये थे, सब बयान किये। रमेश को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यशवंत के राजनीतिक विचार कितने विषयों में मेरे विचारों से भी ज्यादा स्वतंत्र हैं। उसका यह खयाल बिलकुल गलत निकला कि वह बिलकुल बदल गया होगा, वफादारी के राग अलापता होगा।

रमेश ने कहा- भले आदमी, जब इतने जले हुए हो, तो छोड़ क्यों नहीं देते नौकरी ? और कुछ न सही, अपनी आत्मा की रक्षा तो कर सकोगे !

यशवंत- मेरी चिंता पीछे करना, इस समय अपनी चिंता करो। मैंने तुम्हें सावधान करने को बुलाया है। इस वक्त सरकार की नजर में तुम बेतरह खटक रहे हो। मुझे भय है कि तुम कहीं पकड़े न जाओ।

रमेश- इसके लिए तो तैयार बैठा हूँ।

यशवंत- आखिर आग में कूदने से लाभ ही क्या ?

रमेश- हानि-लाभ देखना मेरा काम नहीं। मेरा काम तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना है।

यशवंत- हठी तो तुम सदा के हो, मगर मौका नाजुक है, सँभले रहना ही अच्छा है। अगर मैं देखता कि जनता में वास्तविक जागृति है, तो तुमसे पहले मैदान में आता। पर जब देखता हूँ कि अपने ही मरे स्वर्ग देखना है, तो आगे कदम रखने की हिम्मत नहीं पड़ती।

दोनों दोस्तों ने देर तक बातें कीं। कालेज के दिन याद आये। सहपाठियों के लिए कालेज की पुरानी स्मृतियाँ मनोरंजन और हास्य का अविरल स्रोत हुआकरती हैं। अध्यापकों पर आलोचनाएँ हुईं; कौन-कौन साथी क्या कर रहा है, इसकी चर्चा हुई। बिलकुल यह मालूम होता था कि दोनों अब भी कालेज के छात्र हैं। गम्भीरता नाम को भी न थी।

रात ज्यादा हो गयी। भोजन करते-करते एक बज गया। यशवंत ने कहा- अब कहाँ जाओगे, यहीं सो रहो और बातें हों। तुम तो कभी आते भी नहीं ?

रमेश तो रमते जोगी थे ही; खाना खाकर बात करते-करते सो गये। नींद खुली, तो 9 बज गये थे। यशवंत सामने खड़े मुस्करा रहे थे।

इसी रात को आगरे में भयंकर डाका पड़ गया।

रमेश दस बजे घर पहुँचे तो देखा, पुलिस ने उनका मकान घेर रखा है। इन्हें देखते ही एक अफसर ने वारंट दिखाया। तुरंत घर की तलाशी होने लगी। मालूम नहीं, क्योंकर रमेश के मेज की दराज में एक पिस्तौल निकल आया। फिर क्या था, हाथों में हथकड़ी पड़ गयी। अब किसे उनके डाके में शरीक होने से इनकार हो सकता था ? और भी कितने ही आदमियों पर आफत आयी। सभी प्रमुख नेता चुन लिये गये। मुकदमा चलने लगा।

औरों की बात को ईश्वर जाने पर रमेश निरपराध था। इसका उसके पास ऐसा प्रबल प्रमाण था, जिसकी सत्यता से किसी को इनकार न हो सकता था। पर क्या वह इस प्रमाण का उपयोग कर सकता था ?

रमेश ने सोचा, यशवंत स्वयं मेरे वकील द्वारा सफाई के गवाहों में अपना नाम लिखाने का प्रस्ताव करेगा। मुझे निर्दोष जानते हुए वह कभी मुझे जेल न जाने देगा। वह इतना हृदय-शून्य नहीं है। लेकिन दिन गुजरते जाते थे और यशवंत की ओर से इस प्रकार का कोई प्रस्ताव न होता था; और रमेश खुद संकोचवश उसका नाम लिखाते हुए डरते थे। न-जाने इसमें उसे क्या बाधा हो। अपनी रक्षा के लिए वह उसे संकट में न डालना चाहते थे।

यशवंत हृदय-शून्य न थे, भाव-शून्य न थे, लेकिन कर्म-शून्य अवश्य थे। उन्हें अपने परम मित्र को निर्दोष मारे जाते देखकर दुःख होता था, कभी-कभी रो पड़ते थे; पर इतना साहस न होता था कि सफाई देकर उसे छुड़ा लें। न-जाने अफसरों का क्या खयाल हो ! कहीं यह न समझने लगें कि मैं भी षड्यंत्र कारियों से सहानुभूति रखता हूँ, मेरा भी उनके साथ कुछ सम्पर्क है। यह मेरे हिन्दुस्तानी होने का दंड है ! जानकर जहर निगलना पड़ रहा है। पुलिस ने अफसरों पर इतना आतंक जमा दिया कि चाहे मेरी शहादत से रमेश छूट भी जाय, खुल्लमखुल्ला मुझ पर अविश्वास न किया जाय, पर दिलों से यह संदेह क्योंकर दूर होगा कि मैंने केवल एक स्वदेश-बंधु को छुड़ाने के लिए झूठी गवाही दी ? और बंधु भी कौन ? जिस पर राज-विद्रोह का अभियोग है!

इसी सोच-विचार में एक महीना गुजर गया। उधर मजिस्ट्रेट ने यह मुकदमा यशवंत ही के इजलास में भेज दिया। डाके में कई खून हो गये थे। और मजिस्ट्रेट को उतनी ही कड़ी सजाएँ देने का अधिकार न था जितनी उसके विचार में दी जानी चाहिए थीं।

यशवंत अब बड़े संकट में पड़ा। उसने छुट्टी लेनी चाही; लेकिन मंजूर न हुई। सिविल सर्जन अँग्रेज था। इस वजह से उसकी सनद लेने की हिम्मत न पड़ी। बला सिर पर आ पड़ी थी और उससे बचने का उपाय न सूझता था।

भाग्य की कुटिल क्रीड़ा देखिए। साथ खेले और साथ पढ़े हुए दो मित्र एक-दूसरे के सम्मुख खड़े थे, केवल एक कठघरे का अंतर था। पर एक की जान दूसरे की मुट्ठी में थी। दोनों की आँखें कभी चार न होतीं। दोनों सिर नीचा किये रहते थे। यद्यपि यशवंत न्याय के पद पर था, और रमेश मुलजिम, लेकिन यथार्थ में दशा इसके प्रतिकूल थी। यशवंत की आत्मा लज्जा, ग्लानि और मानसिक पीड़ा से तड़पती थी और रमेश का मुख निर्दोषिता के प्रकाश से चमकता रहता था।

दोनों मित्रों में कितना अंतर था। एक उदार था। दूसरा कितना स्वार्थी। रमेश चाहता, तो भरी अदालत में उस रात की बात कह देता। लेकिन यशवंत जानता था, रमेश फाँसी से बचने के लिए भी उस प्रमाण का आश्रय न लेगा, जिसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ।

जब तक मुकदमे की पेशियाँ होती रहीं, तब तक यशवंत को असह्य मर्म-वेदना होती रही। उसकी आत्मा और स्वार्थ में नित्य संग्राम होता रहता था; पर फैसले के दिन तो उसकी वही दशा हो रही थी, जो किसी खून के अपराधी की हो। इजलास पर जाने की हिम्मत न पड़ती थी। वह तीन बजे कचहरी पहुँचा। मुलजिम अपना भाग्य-निर्णय सुनने को तैयार खड़े थे। रमेश भी आज रोज से ज्यादा उदास था। उसके जीवन-संग्राम में वह अवसर आ गया था, जब उसका सिर तलवार की धार के नीचे होगा। अब तक भय सूक्ष्म रूप में था, आज उसने स्थूल रूप धारण कर लिया था।

यशवंत ने दृढ़ स्वर में फैसला सुनाया। जब उसके मुख से ये शब्द निकले कि रमेशचन्द्र को 7 वर्ष का कठिन कारावास, तो उसका गला रुँध गया। उसने तजवीज़ मेज पर रख दी। कुर्सी पर बैठकर पसीना पोंछने के बहाने आँखों में उमड़े हुए आँसुओं को पोंछा। इसके आगे तज बीज़ उससे न पढ़ी गयी।

रमेश जेल से निकलकर पक्का क्रांतिवादी बन गया। जेल की अँधेरी कोठरी में दिन-भर के कठिन परिश्रम के बाद वह दोनों के उपकार और सुधार के मनसूबे बाँधा करता था। सोचता, मनुष्य क्यों पाप करता है ? इसलिए न कि संसार में इतनी विषमता है। कोई तो विशाल भवनों में रहता है और किसी को पेड़ की छाँह भी मयस्सर नहीं। कोई रेशम और रत्नों से मढ़ा हुआ है, किसी को फटा वस्त्र भी नहीं। ऐसे न्याय-विहीन संसार में यदि चोरी, हत्या और अधर्म है तो यह किसका दोष है ? वह एक ऐसी समिति खोलने का स्वप्न देखा करता, जिसका काम संसार से इस विषमता को मिटा देना हो। संसार सबके लिए है और उसमें सबको सुख भोगने का समान अधिकार है। न डाका, डाका है, न चोरी, चोरी। धनी अगर अपना धन खुशी से नहीं बाँट देता, तो उसकी इच्छा के विरुद्ध बाँट लेने में क्या पाप ! धनी उसे पाप कहता है तो कहे। उसका बनाया हुआ कानून दण्ड देना चाहता है, तो दे। हमारी अदालत भी अलग होगी। उसके सामने वे सभी मनुष्य अपराधी होंगे जिनके पास जरूरत से ज्यादा सुख-भोग की सामग्रियाँ हैं। हम भी उन्हें दंड देंगे, हम भी उनसे कड़ी मिहनत लेंगे। जेल से निकलते ही उसने इस सामाजिक क्रांति की घोषणा कर दी। गुप्त सभाएँ बनने लगीं, शस्त्रास्त्र जमा किये जाने लगे और थोड़े ही दिनों में डाकों का बाजार गरम हो गया। पुलिस ने उसका पता लगाना शुरू किया। उधर क्रांतिकारियों ने पुलिस पर भी हाथ साफ करना शुरू किया। उनकी शक्ति दिन-दिन बढ़ने लगी। काम इतनी चतुराई से होता था कि किसी को अपराधी का कुछ सुराग न मिलता। रमेश कहीं गरीबों के लिए दवाखाने खोलता, कहीं बैंक। डाके के रुपयों से उसने इलाके खरीदना शुरू किया। जहाँ कोई इलाका नीलाम होता वह उसे खरीद लेता। थोड़े ही दिनों में उसके अधीन एक बड़ी जायदाद हो गयी। इसका नफा गरीबों के उपकार में खर्च होता था। तुर्रा यह कि सभी जानते थे, यह रमेश की करामात है, पर किसी की मुँह खोलने की हिम्मत न होती थी। सभ्य-समाज की दृष्टि में रमेश से ज्यादा घृणित और कोई प्राणी संसार में न था। लोग उसका नाम सुनकर कानों पर हाथ रख लेते थे। शायद उसे प्यासों मरता देखकर कोई एक बूँद पानी भी उसके मुँह में न डालता लेकिन किसी की मज़ाल न थी कि उस पर आक्षेप कर सके।

इस तरह कई साल गुजर गये। सरकार ने डाकुओं का पता लगाने के लिए बड़े-बड़े इनाम रखे। योरोप से गुप्त पुलिस के सिद्धहस्त आदमियों को बुला कर इस काम पर नियुक्त किया। लेकिन गजब के डकैत थे, जिनकी हिकमत के आगे किसी की कुछ न चलती थी।

पर रमेश खुद अपने सिद्धान्तों का पालन न कर सका। ज्यों-ज्यों दिन गुजरते थे, उसे अनुभव होता था कि मेरे अनुयायियों में असंतोष बढ़ता जाता है। उनमें भी जो ज्यादा चतुर और साहसी थे, वे दूसरों पर रोब जमाते और लूट के माल में बराबर हिस्सा न देते थे। यहाँ तक कि रमेश से कुछ लोग जलने लगे। वह राजसी ठाट से रहता था। लोग कहते उसे हमारी कमाई को यों उड़ाने का क्या अधिकार है ? नतीजा यह हुआ कि आपस में फूट पड़ गयी।

रात का वक्त था; काली घटा छायी हुई थी। एक युवक ने कहा- आप बार-बार मुझी को क्यों चुनते हैं ? हिस्सा लेनेवाले तो सभी हैं, मैं ही क्यों बार-बार अपनी जान जोखिम में डालूँ ?

रमेश ने दृढ़ता से कहा- इसका निश्चय करना मेरा काम है